महाप्राण

नामदेव ढसाल

(धरती के नरक से निकले महानायक का महाप्राण)

संपादक

एच.एल. दुसाध

सुरेश केदारे

महाप्राण नामदेव ढसाल

(धरती के नरक से निकले महानायक का महाप्रयाण)

एच.एल. दुसाध

दुसाध प्रकाशन

लखनऊ

प्रथम संस्करण : 2014
द्वितीय संस्करण : 2020

ISBN : 978-81-87618-86-7

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के लिए
द्वारा
प्रकाशक : **दुसाध प्रकाशन**
डाइवर्सिटी हाउस, 2/1467,
आदिल नगर, कल्याणपुर, लखनऊ-226022
E-mail : hl.dusadh@gmail.com
मो. : 9654816191

प्रशासनिक कार्यालय
बी-1, 149/9 किशन गढ़, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070
संपर्क : 011-26125979, 9654816191

© लेखकों की ओर से सम्पादक

मूल्य : 150.00 रुपये

रचना	:	**महाप्राण नामदेव ढसाल**
संपादक	:	एच.एल. दुसाध-सुरेश केदारे
आवरण	:	शशिकान्त
शब्दांकन	:	कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक	:	क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

समर्पण

*ज्ञात-अज्ञात उन पैंथरों
को जिन्होंने दलित मुक्ति के
लिए सर्वस्व न्योछावर
कर दिया*

सम्पादकीय

आखिर 15 जनवरी 2014 को दलित पैंथर के संस्थापक अध्यक्ष पद्मश्री नामदेव ढसाल का बम्बई अस्पताल में दुःखद निधन हो गया। उनका हमें छोडकर चले जाना हमारे लिये धरती फटने या आसमान गिरने से बढ़कर है। उनके जाने से परिवर्तनकारी या आंबेडकरी मुक्ति आंदोलन का बड़ा नुकसान हुआ। सन 1981 से मायस्थेनिया जैसे गंभीर बिमारी से वे लड़ रहे थे। आखिरकार कैंसर से उनकी मृत्यु हो गयी। जीवन के आखरी सांस तक वे आंबेडकरी योद्धा के रूप में सक्रिय रहे। ''दलित पैंथर'' यह उनकी हाल ही में प्रकाशित आखरी किताब है जो बम्बई अस्पताल में ही उन्होंने बीमार स्थिति में लिखकर पूरी कर डाली। दलित पैंथर में उनका एक सहयोगी कार्यकर्ता बने रहना मेरे लिये गर्व की बात थी। उनके सान्निध्य के क्षण मैं अपने जीवन की बड़ी पूँजी मानता हूँ।

उनके गुजर जाने के बाद अखबारों में या समकालीन संपादक मित्रों ने श्रद्धांजलि के रूप में काफी लिखा। इलेक्ट्रॉनिक चैनल पर उनका जीवन, आंदोलन, साहित्य, भूमिका आदि विषयों पर काफी चर्चा हुई। पर यह सब सुनने के बाद मैं बेचैन रहा। मुझे यह सब बातें अधूरी-सी लग रही थीं। काफी हद तक यह सब चर्चा उनके साहित्य क्षेत्र में दिया हुआ योगदान और भारतीय साहित्य में उनके कविता के निरालेपन तक ही सीमित रही। प्रस्थापित मराठी साहित्य में शुरू के गोलपीठा से लेकर निर्वाण के पहले की पीढ़ा तक नामदेव ढसाल ने जो बदलाव लाया, वह साहित्य क्षेत्र में एक क्रांति रही। लेकिन उनका एक करीबी कार्यकर्त्ता होने के नाते मैंने उन्हें खासकार जिस रूप में देखा वह था आम्बेडकरी आन्दोलन के तीसरे पीढ़ी के आन्दोलन के जनक, आम्बेडकरी तत्त्व ज्ञान के

कृतिप्रवण भाष्यकार और आम्बेडकरी सिद्धान्त पर निष्ठा रखनेवाला एक दुरदर्शी प्रयोगवादी नेता।

सन् 1956 में दलितों के मुक्तिदाता और भारत के भाग्यविधाता डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर के महापरिनिर्वाण के बाद दलित आन्दोलन टूट-सा गया था। एक प्रबल विरोधी पक्ष काँग्रेस को पर्याय देने की और संसदीय राजनीति रिपब्लिकन पार्टी बनाकर कामयाब बनाने की आम्बेडकर साहब की इच्छा अधूरी रह गई थी। ऐसे में उनके पश्चात 3 अक्तूबर 1957 को उनके अनुयायियों ने शेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन बरखास्त करके रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना नागपुर में की। लेकिन अल्पकाल में ही तकनीकी मुद्दों पर आर.पी.आई. बिखर गई और उसका रूपांतरण दुरूस्त-नादुरूस्त यह दो गुट पड़ने में हुआ। उसके बाद सन् 1957 से लेकर सन् 1972 तक का इतिहास मैं यहाँ दोहराना नहीं चाहता। लेकिन इस दौरान संयुक्त महाराष्ट्र समिति के आन्दोलन में आर.पी.आई. का योगदान कर्मवीर दादासाहब गायकवाड के नेतृत्व में हुआ। देशव्यापी भूमिहीन आन्दोलन दलित आन्दोलन का इतिहास के विशिष्ट बिन्दू है।

सन् 1972 में कर्मवीर दादासाहब गायकवाड का देहान्त होने तक आर.पी.आई. चूर-चूर हो गया था। दलितों पर अन्याय अत्याचार और जुल्म बढ़ रहे थे। शहरों तथा गाँव खेड़े में जातीयता के कारण दलितों पर सामूहिक हमले हो रहे थे। मनु की वारिस सवर्ण जीतियों की मानसिकता उग्र रूप ले रही थी। ऐसे में संसद में एलिया पेरूमल की रिपोर्ट पेश हो गई थी। इसी पार्श्वभूमि पर 9 जूलाई 1972 में ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिये नामदेव ढसाल और ज. वी. पवार जैसे युवकों ने दलित पैंथर की स्थापना की। पैंथर की यह चिन्गारी देखते-देखते आग बनकर रह गई। लेकिन दुर्भाग्य से यह पैंथर का रोमांचकारी क्रांति पर्व अल्पजीवी रही।

नामदेव ढसाल द्वारा लिखा हुआ दलित पैंथर का जाहीरनामा मार्क्सवाद से प्रेरित है और कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो है। ऐसा आरोप होने से पेंथर ढसाल-ढाले यह दो गुट में बट गई। ढसाल-ढाले फूट होने के कारण दलित आन्दोलन को गहरा सदमा पहुँचा। उसके इतने अनिष्ट परिणाम हुए कि बाद की पीढ़ियाँ अब तक भुगता रही हैं। इस फूट के कारण आम्बेडकर आन्दोलन को भारी नुकसान पहुँचा है और बाद का आन्दोलन पूर्वाश्रमी के महार और अभी के नवबौद्ध इस एक जातीय कोने में सिमट कर रह गया। मैं शुरू में ही यह कबूल करता हूँ कि ढसाल-ढाले विवादों पर अधिकारिक तौर पर बोलने वाला कार्यकर्त्ता नहीं हूँ।

क्योंकि जब पैंथर स्थापन हुई तब मैं बारह साल का लड़का था। लेकिन पैंथर के उस रोमांचितकारी दिन मैं आज भी याद करता हूँ। बाद में ढसाल साहब के सान्निध्य में रहते हुए इस फूट के मुद्दे पर जानकारी पाने के लिये उनको कई बार छेड़ता रहा और जानकारी पाता रहा। वास्तविक पैंथर का ढसाल लिखित घोषणापत्र यह बाबा साहब के स्वतंत्र मजदूर पार्टी के जाहिरनामा से ही प्रेरित था। उसका ही एक भाग था, अगर मैं ऐसा कहूँ तो यह अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। सत्ता, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और ज्ञान से वंचित दलित कौन? अनुसूचित जाति, बौद्ध, उत्पीड़ित जनता, कामगार, भूमिहीन, खेत मजदूर, गरीब किसान, भटकी जमात, आदिवासी ऐसी दलित होने की, व्याख्या नामदेव ढसाल ने की। इस जाहीरनामा के तहत ढसाल कैसे मार्क्सवादी और कम्युनिस्टों के संगी होते हैं, यह बात मुझे अभी तक समझ में नहीं आयी है। ऐसे ही आरोप कर्मवीर दादासाहब गायकवाड संयुक्त महाराष्ट्र के आन्दोलन में जब शामिल हुए और नेतृत्व कर रहे थे तब आम्बेडकरी आन्दोलन के सूट-बूट टाईवालों ने लगाये थे। क्योंकि समिति के घटक पक्षों के रूप में कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट आदि सहयोगी दल समिति आन्दोलन में कार्यरत थे। यानी जो टेजडी दादासाहब गायकवाड की हुई वही बात नामदेव ढसाल के साथ हुई। ऐसा मानने वाला मैं एक कार्यकर्त्ता हूँ।

दलित पैंथर टूटने के बाद ढसाल अल्पमत में गये। इस दरम्यान 1977 में राजा ढाले ने पैंथर बरखास्त किया और मास मुव्हमेन्ट की स्थापना की। बाद में सम्यक क्रांति और फिर फूले-आम्बेडकर विचारधारा तक उनका सफर जारी रहा है। लेकिन नामदेव ढसाल ने आखरी सांस तक दलित पैंथर अपने बलबूते पर चलाया। चार दशक से ज्यादा काल अनेक घाव सह के और उतार चढ़ाव देखकर भी उन्होंने दलित पैंथर का कारवा रुकने नहीं दिया। इसका एकमेव कारण आम्बेडकरी सिद्धान्त पर उनकी अपार श्रद्धा और निष्ठा।

जातिहीन और वर्गहीन समाज निर्माण करने के बावजूद सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित करना यह आम्बेडकरी आन्दोलन का शेष लक्ष्य रहा है। इस सिद्धान्त के प्रति जीवन समर्पित नामदेव ढसाल का रहा। डॉ. आम्बेडकर कहते थे ''ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद, यह दो हमारे शत्रु हैं। यह दोनों शत्रुओं को खत्म करने के लिये सामाजिक और आर्थिक न्याय की लड़ाई लड़नी है। लेकिन यह लड़ाई भारतीय समाज व्यवस्था का प्रमुख अंग जातिप्रथा को खत्म किये बिना नहीं लड़ी और जीती जा सकती है तथा राजकीय क्रांति सामाजिक और सांस्कृतिक

क्रांति के बाद ही कामयाब होती रही है, आम्बेडकर साहब के इन विचारों का सही इल्म ढसाल सहाब को हुआ था। इसलिये उन्होंने दलित, शोषित, पीड़ित और वंचितों के भौतिक शोषण की बात बार-बार दोहराकर उसके खिलाफ संघर्ष करने के लगातार प्रयास किया।

कार्यप्रवण आन्दोलनकारी नेताओं में भारतीय जाति प्रथा का इतना गहरा विश्लेषण डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर, डॉ. राममनोहर लोहिया के बाद नामदेव ढसाल जैसा शायद किसी नेता ने किया होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। आम्बेडकर साहब के बाद का आन्दोलन उनके अनुयायियों की गैर जिम्मेदारी और दूरदर्शी दृष्टि के अभाव के कारण एक जातीय बन गया। इसके लिये ढसाल बहुत चिंतित और निराश थे। लेकिन उन्होंने कभी हार नहीं मानी।

''सुसंगति यह गधे का नियम है'' ऐसा इमर्सन कहते है। यानी बदले हुए हालत में भी अपनी पुरानी बातों पर ही अड़े रहना ऐसी कर्मठ पोथीनिष्ठता के खिलाफ ढसाल थे। तर्कनिष्ठता और वास्तविकता इसका इतना सुरेख मिलाप रखने वाला दूसरा दूरदर्शी नेता दलित आन्दोलन ने नहीं दिया। दलित पैंथर के शुरू के दौर में हजारों की तादात में पैंथर की सभाएं हुआ करती थीं। शुरू के 4-5 साल का वह एक अलग-सा ही माहौल था। पैंथर के निर्माण से पूरे देश में ही उथल पुथल मची थी। उस काल के दो लोकप्रिय नेता थे नामदेव ढसाल और राजा ढाले। उनके साथ ज.वी. पवार, अविनाश महातेकर, भाईसंगारे, आदि नेता मूव्हमेंट चलाते रहे। लेकिन मेरे लिये मेरे बचपन से आयडीएल बने रहे नामदेव ढसाल। विद्यार्थी जीवन में ही मैं उनका गोलपीठा पढ़कर उनके प्यार में डूब गया।

ढसाल का भाषण यानी अंगार। खासकर भाषण देते समय हिन्दूधर्म के रीति रिवाज के साथ उनकी देवी देवताओं पर टीका-टिप्पणी करना और उनका मजाक उड़ाना, यह सब उस जमाने की बात रही थी। लेकिन बाद में इसका आत्मपरीक्षण करते समय ढसाल साहब ने कबूल किया हमने हिन्दूधर्म और शास्त्रों का जरूरत से ज्यादा उद्धार किया। गाली-गलोज किया यह सब जरूरी नहीं था क्योंकि जिस दिन से भारतीय संविधान का अमल शुरू हुआ उस दिन से यह बहस खत्म हो गई थी। क्योंकि भारतीय संविधान ने ही प्रत्येक भारतीय नागरिक को श्रद्धा और उपासना की स्वतंत्र अर्पित किया है। हमारे इस हिन्दू देवताओं पर गलत जुबानी हमलों के कारण बौद्धोत्तर दलित संगठन छोड़कर भारी तादाद में चले गये।

दलित पैंथर के संस्थापक होने के बावजूद वे खुद को आखिर तक आम्बेडकर मिशन के लिये काम करने वाला एक सैनिक समझते रहे। वह बार-बार कहते रहे मैं कोई नेता नहीं, हमारा नेता आने वाले हजारों साल सिर्फ और सिर्फ डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर।

उनके दिये हुए कुछ सिद्धान्त आने वाली आन्दोलनकारी पीढ़ियों के लिये एक देन है। जैसे की "आठ सौ प्रमुख जातीय और छह हजार उपजातीय जिस देश में हैं उस देश का कोई भविष्य नहीं है।"

"संसदीय राजनीति की मर्यादा आम्बेडकर साहब के जीवनकाल में ही स्पष्ट हुई थी। इसलिये जिन्होंने संविधान का निर्माण किया उसी संविधान कर्त्ता को इलेक्शन में पराजित होना पड़ा।"

"भारतीय समाज यह एक सर्कार समाज है यानी कम्पोजित कल्चर है।"

बुद्ध धर्म के बारे में उनका विश्लेषण 'बौद्ध धर्म : कुछ शेष प्रश्न' में देखने को मिलता है। "अम्बेडकर सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट इस पुस्तक में उनका गहरा चिंतन देखने को मिलता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और पूर्वमीमांसा यह छह आस्तिक और चार्वाक जैन और बौद्ध यह तीन नास्तिक तत्त्वज्ञान के बारे में उनका गहरा चिंतन और ज्ञान, इससे मैं प्रभावित था। लेकिन नामदेव ढसाल केवल सिद्धान्तवादी नेता नहीं थे। बल्कि उस सिद्धान्त को अमल में लाने के लिये आन्दोलन करने वाले एक प्रयोगवादी नेता थे। इतिहास का विश्लेषण करने की उनकी पद्धति से मैं प्रभावित था। उसका सुखद अनुभव उनके सान्निध्य में मैं कई बार ले चुका हूँ। डॉ. आम्बेडकर की सेपरेट सेटलमेंट की माँग या बौद्धधर्मांतरण या बौद्धधम्म का भौतिकवाद यह सारी बातें अभी नहीं होगी। अभी तो वह केवल स्मृति बन गई।

अपने पूरे जीवन संघर्ष में ढसाल हमेशा विवादों में घिरे रहे। सामाजिक और राजकीय जीवन में जो भी भूमिका लेनी पड़ी, वह अपनी जमींर को साक्षी रखकर लिए। भूमिका लेते समय उन्होंने कभी किसी की भी परवाह नहीं की। हाल ही में प्रकाशित समयान्तर मासिक में श्रद्धांजलि के रूप में प्रकाशित एक कॉलम ऐसा है। "उनके (नामदेव ढसाल) राजनीतिक जीवन में भटकावे को लेकर उनकी अक्सर आलोचना की जाती है। वह यही नहीं कि काँग्रेस के साथ गए बल्कि नेशनलिस्ट काँग्रेस और शिवसेना में भी शामिल हुए। यहाँ तक कि वह भाजपा, शिवसेना और आरपीआइ संगठन के भी करीब रहे।

किन्तु ढसाल न कभी शिवसेना में शामिल हुए न नेशनलिस्ट काँग्रेस में, शिवसेना के साथ पैंथर का राजनैतिक गठबन्धन कभी नहीं था। केवल भाईचारा बढ़ाने के लिये था, ताकि दलितों पर हुए अत्याचार की तीव्रता कम हो, इसके लिये मित्रता के उद्देश्य से वो मित्रता थी। केवल मित्रता का उद्देश्य था। साहित्य क्षेत्र में उनके बारे में कई दिग्गजों ने लिखा है, विजय तेंदुलकर, दिलीप चित्रे, अर्जुन, डांगले, सतीश काट्टसेकर, प्रभा गणोरकर, प्रज्ञा पवार, कई सारे उदाहरण हैं। लेकिन मेरे बड़े भाईसाहब एच.एल. दुसाध जी 4 दिसम्बर 2013 में बम्बई अस्पताल में जब ढसाल साहब को मिलने के लिये लखनऊ से आये, आइसीयू में ढसाल साहब से मिलने के असफल प्रयास के बाद हम दोनों ढसाल साहब की कर्मभूमि गोलपीठा गये। हमारे साथ पैंथर कार्यकर्त्ता आत्माराम मिरके थे। रेड लाइट एरिया का वह पूरा माहौल देखने के बाद दुसाधजी बोल उठे। ''धरती के नरक से निकला एक अप्रतीम महानायक नामदेव ढसाल'' और हाल ही में उनके निधन के बाद बहुत दिग्गजों ने श्रद्धांजली के रूप में अपनी अलग-अलग प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसमें ढसालजी का वर्णन करते हुए श्रेष्ठ साहित्यिकार विष्णु खरे जी ने कहा भारतीय कविताओं का आम्बेडकर नामदेव ढसाल, इसके आगे मेरे जैसा कार्यकर्त्ता क्या कह सकता है। मेरे ओठों पर सिर्फ रफ़ी साहब के गाये हुए गीत के चन्द लब्ज ढसाल साहब के स्मृति में है। ''कल चमन था आज एक सहेरा हुआ, देखते ही देखते ये क्या हुआ।'' मेरे प्रिय नेता को मेरा विनम्र अभिवादन!

–सुरेश केदारे

❖ ❖ ❖

मैंने कुछ सप्ताह पूर्व ढसाल साहब के मित्र व चर्चित कवि विष्णु खरे को एक मेल भेज कर आगामी 15 मार्च, 2014 को दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब में प्रस्तुत पुस्तक के विमोचन समारोह में उपस्थित होने का अनुरोध किया था।उनका जवाब आया फरवरी के दूसरे सप्ताह में। उन्होंने समयाभाव के कारण शिरकत न कर पाने के लिए खेद प्रकट किया था। साथ ही इतनी जल्दी यह पुस्तक पाठकों

बीच लाने के लिए के हमारे प्रयास की भरपूर सराहना करते हुए एक भारी उत्साहवर्द्धक सूचना दी थी। उन्होंने लिखा था-'पता नहीं नामदेव की शव-यात्रा के चित्र आपने देखे हैं या नहीं किन्तु वह एक बड़े नेता के सम्मान जैसी निकली थी। उसमें करीब साठ हजार लोग शामिल हुए थे। मुंबई का ट्रैफिक रुक गया था। दिल्ली में हिंदी के साठ लेखकों की यदि इकट्ठी मृत्यु हो जाय तो छः सौ से ज्यादा लोग भी नहीं आयेंगे और जो आएंगे उनमें भी अधिकांश पारिवारिक होंगे'।

खरे साहब ने जो कुछ कहा था उसमें से कहीं भी अतिश्योक्ति नहीं थी। मैंने उनकी शव-यात्रा में उमड़े जन सैलाब का चित्र मुंबई के स्थानीय अखबारों में देखा था। ढसाल साहब के परिनिर्वाण के बाद के एक सप्ताह के कई अखबार भाई सुरेश केदारे जी ने उनकी शोक-सभा में शिरकत करने गए डॉ. संजय पासवान के हाथों मेरे लिए भिजवाया था। मुंबईवासियों ने जिस विपुल मात्रा में उनकी शव-यात्रा में शामिल होकर उन्हें शेष विदाई दी थी उससे खरे साहब की तरह ढसाल साहब के सहयोगी और एकनिष्ठ अनुसरणकारी सुरेश केदारे भी अभिभूत हुए थे। उन्होंने विश्व-कवि की शव-यात्रा में उमड़ी बेपनाह भीड़ का आकलन करने के लिए इस पुस्तक के पृष्ठ में महती योगदान करने वाले सुधीन्द्र कुलकर्णी का उदहारण देते हुए यह बताया था कि उनसे वे बमुश्किल दो मीटर पर थे, पर भीड़ इतनी थी कि कोशिश करके भी उनके निकट न जा सके।मुंबई ही नहीं महाराष्ट्र के पुणे, नासिक, नागपुर इत्यादि विभिन्न शहरों में आयोजित शोक-सभाओं में भी भारी संख्या में इक्कट्ठे होकर लोगों ने महान पैंथर के प्रति जो सम्मान प्रदर्शित किया, वह लेखकों को नहीं, राजनीति, फिल्म इत्यादि जगत से जुड़े खास लोगों को ही मय्यसर होता है।

किन्तु जिस नामदेव ढसाल के प्रति महाराष्ट्र में लोगों ने खास नेता जैसा सम्मान दिया उसके प्रति हिंदी पट्टी के लोग महज एक साधारण लेखक जैसा सम्मान दिए। विशेषकर दिल्ली जैसे साहित्य संपन्न महानगर में और तो और दलित लेखकों ने उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने में जो कृपणता दिखलाई वह ढसाल साहब के गुणानुरागियों के लिए भारी पीड़ादायक बात रही। यहाँ दलित लेखकों की ओर 19 जनवरी को एक शोक-सभा का आयोजन किया गया था, जिसमें उपस्थित रहने के लिए मुझे भी कहा गया था। किन्तु दिल्ली से दूर लखनऊ में रहने के कारण मेरे लिए शिरकत कर पाना मुमकिन नहीं रहा।बाद में मैंने

19 जनवरी की शाम जब एक लेखक मित्र से उस सभा की जानकारी लिया तो उन्होंने उसमें शामिल लोगों की जो संख्या बताई वह एक शब्दों में शॉकिंग थी।उसी समय मैंने इस किताब को लाने का मन बनाया। अगले दो-तीन दिनों में इस किताब की परिकल्पना पर सुधीन्द्र कुलकर्णी, सुरेश केदारे, डॉ. संजय पासवान,बुद्ध शरण हंस, दिलीप मंडल, डॉ विजय कुमार त्रिशरण और छेदी पासवान जैसे ढसाल के कद्रदानों से बात की। उन्होंने हर संभव सहयोग का आश्वासन देते हुए इस पर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित किया, जिसका परिणाम आपके सामने है।इसके लिए हम इनका चिर आभारी रहेंगे। बाद में भाई अनिल चमड़िया और शीलबोधि ने भी इसमें महती योगदान किया, जिसके लिए धन्यवाद के दो शब्द उन्हें स्वीकारने ही होंगे।

ढसाल साहब के प्रति फीका सम्मान प्रदर्शित करनेवाले दिल्ली के दलित लेखकों ने एक बार फिर निराश किया। यहाँ सक्रिय प्राय सभी लेखकों को ही मैंने इस किताब के लिए लेख देने का आग्रह किया था। पर अधिकांश ही समयाभाव का रोना रोते हुए पीछे हट गए। कुछ ने लिखने का मन बनाया भी तो उनके विषय में पर्याप्त सूचनाएं न होने के कारण भी सरेंडर कर गये। इसे इच्छाशक्ति का अभाव से भिन्न कुछ और कहा ही नहीं जा सकता। इंटरनेट के युग में सूचनाओं का अभाव,वह भी ढसाल पर!

बहरहाल इसमें कोई संदेह नहीं कि की हिन्दी पट्टी में ढसाल साहब पर नहीं के बराबर काम होने के कारण उनपर सूचनाओं का सचमुच अभाव है। बिना इंटरनेट का सहारा लिए काम नहीं चल सकता। किन्तु हमें पूरा यकीन है कि इस पुस्तक के आने के बाद उनपर लिखने वालों के लिए नेट पर निर्भरता खत्म हो जाएगी। इस पुस्तक में लगभग डेढ़ दर्जन लेखक बंधुओं ने उनके व्यक्तित्व के विविध आयाम को सामने लाने का जो प्रयास किया है उससे पाठक खुद को सूचनाओं के समंदर में तैरते पाएंगे। हम अपने लेखक बंधुओं के इस बहुमूल्य अवदान को कभी नहीं भूलेंगे।

आज ही नहीं विगत कई सालों से ढसाल साहब का जिक्र छिड़ने पर चाहे उनका प्रशंसक हो या विरोधी, हिंदुत्ववादी शिवसेना के साथ उनके रिश्तों का जिक्र करना नहीं भूलते। ऐसा इस पुस्तक में भी नजर आया है। खुद उनके सबसे बड़े प्रशंसक विष्णु खरे भी उनके प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त हुए उस कॉमन बात का जिक्र करना नहीं भूले। हालाँकि शिवसेना के साथ उनके रिश्तों पर

अफसोस जताने के बावजूद वह यह बताना भी नहीं भूले कि इससे अंततः उनके लेखन पर कोई फर्क नहीं पड़ा। अर्थात व्यक्तिगत और सांगठनिक स्तर पर भले ही उन्होंने हिंदुत्ववादियों के साथ सम्बन्ध बनाया किन्तु उनकी उनकी लेखनी पूरी तरह हिंदुत्व-मुक्त रही। बहरहाल हिंदुत्ववादियों से निकटता की कीमत अपने चाहनेवालों की भारी उपेक्षा के रूप में ढसाल ही नहीं, शैलेश मटियानी जैसे साहित्य शिल्पी व अन्य कईयों को अदा करनी पड़ी। इस कारण लोगों ने इनके संघर्ष और रचनात्मक अवदान को बड़ी सहजता से खारिज करने का हिमाकत किया। इस बात को अपने लेख में प्रमुखता से उठाते हुए लेखक-एक्टिविस्ट पलाश विश्वास ने बाकायदे एक बड़ा सवाल खड़ा किया है। वह यह कि आखिर वे कौन सी परिस्थितयां हैं कि हमारे जांबाज, समर्थ और प्रतिबद्ध लोग अपनी राह छोड़कर अत्मध्वंस के लिए मजबूर कर दिए जाते हैं? ढसाल के सम्बन्ध में हमारे संपादक साथी सुरेश केदारे ने कुछ स्पष्टीकरण दिया है। किन्तु हिदुत्ववादियों से निकटता का समबन्ध सिर्फ ढसाल और शैलेश मटियानी जैसी कुछ विरल प्रतिभाओं तक ही सीमित नहीं है। लम्बे समय से चल रही यह धारा आज भी प्रवाहमान है जिसमें ढेरों ढसाल-मटियानी बह गए और आगे भी कई बहते रहेंगे, आखिर क्यों? पलाश विश्वास द्वारा उठाये इस अप्रिय सवाल से टकराने के लिए अवश्य ही यह किताब बाध्य करेगी।

हिंदुत्ववादियों से सम्बन्धों को अगर माइनस कर दिया जाय तो ऐसा कोई नहीं होगा जो ढसाल की प्रशंसा में बह न जाय। इस पुस्तक में भी हमारे लेखक बंधुओं ने मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा की है। किन्तु उन्होंने उनकी जितनी भी प्रशंसा क्यों न किया हो मेरा मानना है कि उनका अब भी सही मूल्यायान नहीं हुआ है। यह धारणा मुझमें गत दिसम्बर सात को भाई सुरेश केदारे और ढसाल साहब के बाल सखा आत्माराम मिरके, जिन्होंने अपना सारा जीवन कुंवारा रहते हुए अपने बालसखा के लिए समर्पित कर दिया, के साथ गोलपीठा और कमाठीपुरा घूमने के बाद बनी। दो दिन आत्माराम के साथ धरती के उस नरक में विचरण करने के बाद मैंने खुद से बार-बार सवाल किया क्या गोलपीठा और कामाठीपुरा जैसे नरक से, जिस खासियत के लिए ढसाल जाने जाते हैं कोई और ढसाल हुआ? मैंने अपने इस सवाल का जवाब पाने का अबतक जो प्रयास किया है,उत्तर ना रहा है। अब तक मुझे सोफिया लोरेन, मैडोना, माइक टायसन जैसे खेल और फिल्म इत्यादि मनोरंजन जगत से जुड़े कुछ लोग ही दिखे हैं जिन्होंने कुछ हद,

हां कुछ ही हद तक ढसाल जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में पल-बढ़ कर विश्व स्तरीय मुकाम हासिल किया। किन्तु एक साथ साहित्य, समाज और राष्ट्र की राजनीति को प्रभावित करनेवाला धरती के नरक से निकला कोई और व्यक्ति नहीं ढूंढ पाया हूँ। मैं कविता की गहराई उतना नहीं समझाता इसलिए दिलीप चित्रे की भांति यह दावा तो नहीं कर सकता कि भारत के कवियों में एकमात्र ढसाल को ही नोबेल पुरस्कार मिलना चाहिये। किन्तु जिस तरह टैगोर और नायपाल जैसे साहित्यकारों, डेस्मंड टूटू, रिगो वेर्ता मेंचू जैसे एक्टिविस्टों तथा अन्य कईयों को नोबेल मिला उस हिसाब से आधुनिक भारत में नोबेल का कोई योग्यतम पात्र भूमिष्ठ हुआ तो वह ढसाल ही थे। उनकी इस पात्रता का थोड़ा भी अहसास कराने में अगर यह पुस्तक सफल होती है तो अपने व भाई सुरेश केदारे के इस युग्म प्रयास को सफल मानूंगा। शेष में नोबेल के योग्यतम पात्र महाप्राण नामदेव ढसाल शत-शत नमन!

–एच.एल दुसाध

अष्टम डाइवर्सिटी डे
(15 मार्च, 2014)

अनुक्रम

सम्पादकीय		5

अध्याय-1

नामदेव ढसाल का आत्मकथ्य

1. नामदेव के बारे में नामदेव		19
2. डाइवर्सिटी मिशन से इंस्पायर		30

अध्याय-2

समकालीन लेखकों की नजर में ढसाल

1. नहीं रहे दलित पैंथर के संस्थापक	*एच. एल. दुसाध*	43
2. धरती के नरक से निकला एक अप्रतिम नायक	*एच एल दुसाध*	46
3. भारतीय साहित्य का ग्लोबल चेहरा	*एच एल दुसाध*	50
4. टैगोर से भी बड़े कवि	*एच एल दुसाध*	53
5. ढसाल में 99 प्रतिशत कमियां : एक मार्क्सवादी-सह-आंबेडकरवादी	*एच एल दुसाध*	58
6. नामदेव ढसाल : न्याय के लिए चीते की भूख रखने वाला एक कवि	*सुधीन्द्र कुलकर्णी*	62
7. दलित पैंथर, कवि नामदेव ढसाल नहीं रहे	*पलाश विश्वास*	66
8. ढसाल के बहाने शैलेश मटियानी की प्रेतमुक्ति	*पलाश विश्वास*	73
9. अलविदा विद्रोही पैंथर कवि नामदेव ढसाल	*गोपाल नायडू*	78
10. मिशन सिपाही बाबा का	*बृजपाल भारती*	87
11. महाप्राण नामदेव ढसाल	*बुद्ध शरण हंस*	90

12. जलते रहना चाहिए नामदेव ढसाल की मशाल *प्रो. शत्रुघ्न कुमार* 101
13. नामदेव ढसाल, विस्फोटक ऊर्जा का अवसान *बजरंग बिहारी तिवारी* 105
14. नामदेव ढसाल केवल नामदेव ढसाल थे *अनिल चमड़िया* 118
15. नामदेव ढसाल ध्वंस से सृजन के कवि *मोहनदास नैमिशराय* 123
16. वह भारतीय कविता का आम्बेडकर था *विष्णु खरे* 138

साक्षात्कार

साक्षात्कार की प्रश्नावली 133
प्रश्नोत्तर 134
जवाहर लाल कौल 'व्यग्र' 134
के.पी. राहुल 135
बुद्ध शरण हंस 137
डॉ. विजय कुमार त्रिशरण 153
मुसाफिर बैठा 155
सुरेश पंडित 158

अध्याय–1

नामदेव ढसाल का आत्मकथ्य

नामदेव के बारे में नामदेव

(नामदेव ढसाल का आत्म-कथ्य)

मैं कोई जान-बूझकर कविता की ओर नहीं बढ़ा। बल्कि बचपन में ही मैंने अपनी मातृभाषा बोलने के समय ही शब्दों को गढ़ना शुरू कर दिया था।

मेरा पैतृक गांव पूना के नजदीक है। दरअसल एक नदी द्वारा बांटे जाने के कारण यह एक जुड़वा गांव है। मेरा गांव 'पुर' है और इसके आगे 'कानेरसर' नाम का एक अन्य गांव। मेरी मां 'कानेसर' से है जबकि मेरे पिता का घर 'पुर' में है। आज भी दोनों गांवों की आबादी कुल मिलाकर सात हजार से ज्यादा नहीं है।

ये दोनों गांव भी हमारे यहां के अन्य गांवों की तरह हैं। यहां भी जाति प्रथा विद्यमान है और कई जातियों अलग-अलग निवास करती हैं। धार्मिक मान्यताओं के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावों के कारण गांव के लोग छुआछूत मानते हैं।

मेरे पारिवारिक लोग व सगे-संबंधी ग्रामीण क्षेत्र के विभिन्न पर्व-त्याहारों व पारंपरिक अनुष्ठानों में अनवरत रूप से हिस्सा लेते थे। मेरे चाचा, मामा व कई नानाओं ने साथ मिलकर एक तमाशा मंडली बनायी थी। यह प्रख्यात लोक नाट्य गीतकार पाथे बापूराव के समय के पहले की बात है।

तमाशा नाटक की शुरुआत पूस (दिसम्बर-जनवरी) महीने में पूर्णिमा के बाद होती है। मैं अपने मामा डगाडु सोनावने (Dagadu Sonavane) की मंडली को अभ्यास करते हुए नजदीक से देखा करता था। तमाशा के दौरान गाये जाने वाले लावणी गीतों के कड़वे बोल हमारे समुदाय की महिलाओं को उद्वेलित करने का काम करते थे। इससे उनमें चेतना का संचार होता था। मेरी मां व मामियां

Continue Your Reading Journey

This preview has ended. Access the complete library and support our mission.

Join Our Inclusive Reading Community

- ✓ We champion diverse voices and perspectives
- ✓ Your support helps amplify underrepresented authors
- ✓ We provide free access to educational institutions
- ✓ Building bridges through shared stories
- ✓ Creating space for all narratives to be heard

Support Our Mission

Your donation enables us to:

- Curate diverse book collections
- Support authors from marginalized communities
- Provide free resources to educators
- Maintain our accessible digital library

Visit: www.diversitymission.in

Sign the diversity pledge • Make a donation • Download full library